अध्याय 5

सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था

मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के अतिरिक्त सरकार भी होती है, जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस अध्याय में हम उन विविध पहलुओं पर चर्चा नहीं करेंगे जिनके माध्यम से सरकार **आर्थिक जीवन** पर अपना प्रभाव छोड़ती है, बल्कि सरकार के उन तीन विशिष्ट कार्यों तक ही अपने अध्ययन को सीमित रखेंगे जिनका संचालन सरकार का राजस्व और व्यय संबंधी बजटीय उपायों के द्वारा इन कार्यों का संचालन होता है।

प्रथम, कुछ वस्तुएँ, जिसे **सार्वजनिक वस्तुएँ** कहते हैं, (जैसे–राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, सड़क, लोक प्रशासन) *निजी वस्तुओं* (जैसे- कपड़े, कार, खाद्य पदार्थ) से भिन्न होती है और इनकी प्राप्ति बाज़ार तंत्र से नहीं हो सकती है अर्थात वैयक्तिक उपभोक्ताओं और उत्पादकों के बीच संव्यवहार से नहीं हो सकता है। *इसके लिए सरकार की आवश्यकता होती* है। इसे ही *नियतन फलन* कहते हैं।

द्वितीय, सरकार अपनी कर व व्यय नीति के द्वारा आय को इस प्रकार से वितरण करने का प्रयास करती है जो कि समाज के द्वारा "उचित" माना जाता है। सरकार अंतरण अदायगी करके और कर संकलन करके परिवार के वैयक्तिक प्रयोज्य आय पर प्रभाव डालती है। अत: सरकार आय के वितरण को बदल सकती है। इसे *वितरण फलन* कहते हैं।

तृतीय, अर्थव्यवस्था में उच्चावचन की भारी प्रवृत्ति पायी जाती है और बेरोज़गारी अथवा मुद्रास्फीति की स्थिति भी दीर्घकाल तक रह सकती है। अर्थव्यवस्था में रोज़गार और कीमतों का कुल स्तर समस्त माँग के स्तर पर निर्भर करता है, जो कि लाखों निजी आर्थिक एजेंटों के सरकार से पृथक, व्यय निर्णयों का फलन होता है। ये सभी निर्णय अपने आप में कई कारकों जैसे–आय और साख की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं। किसी भी समयावधि में व्यय का स्तर अर्थव्यवस्था के श्रम और अन्य संसाधनों के पूर्ण उपयोग के लिए पर्याप्त नहीं भी हो सकते हैं। चूँकि मज़दूरी और कीमतें नीचे आकर नम्य हो जाती हैं (एक स्तर के नीचे नहीं गिरती हैं) इसीलिए रोज़गार की स्वत: पुनर्स्थापना नहीं हो पाती है। अत: समस्त माँग में वृद्धि करने के लिए नीतिगत उपायों की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, ऐसा समय भी हो सकता है, जब उच्च रोज़गार की दशाओं में उपलब्ध निर्गत से व्यय की मात्रा में वृद्धि हो और इसके कारण मुद्रास्फीति उत्पन्न हो। ऐसी स्थिति में, माँग में कमी करने के लिए प्रतिबंधात्मक शर्तों की आवश्यकता होती है। इनसे घरेलू अर्थव्यवस्था के ***स्थिरीकरण*** की आवश्यकताओं की रचना होती है।

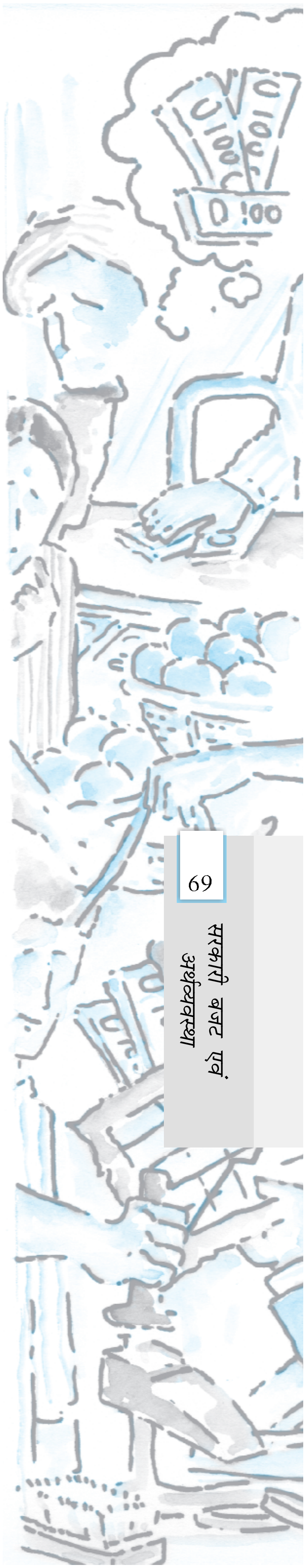

सार्वजनिक वस्तुओं के संबंध में सरकारी प्रावधानों की आवश्यकता को जानने के लिए हमें उन बातों पर विचार करना चाहिए, जो उन्हें निजी वस्तुओं से भिन्न बनाती है। सार्वजनिक और निजी वस्तुओं में दो मुख्य अंतर हैं। प्रथम, सार्वजनिक वस्तुओं का लाभ किसी उपभोक्ता विशेष तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि इसका लाभ सबको मिलता है, किंतु किसी निजी वस्तुओं के मामले में ऐसा नहीं होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति एक चॉकलेट का उपभोग करता है अथवा एक कमीज़ पहनता है तो ये वस्तुएँ किसी दूसरे व्यक्ति को उपलब्ध नहीं होती है। इस व्यक्ति के उपभोग और दूसरों के उपभोग में प्रतिस्पर्धात्मक संबंध होता है। किंतु, यदि हम एक सार्वजनिक उद्यान अथवा वायु प्रदूषण को कम करने के उपायों पर विचार करें, तो इसका लाभ सबको मिलता है। ऐसे उत्पादों का उपभोग कई व्यक्तियों के द्वारा होता है और ये "प्रतिस्पर्धी" नहीं होते हैं, क्योंकि एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के उपभोग को कम किये बगैर इनका भरपूर उपयोग कर सकता है। द्वितीय, निजी वस्तुओं के मामले में जो कोई वस्तु के लिए भुगतान नहीं करता है, वह उसके लाभों से वंचित रहता है। यदि आप किसी स्थानीय थियेटर का टिकट नहीं खरीदें, तो आप उस फिल्म को देखने से वंचित रहते हैं। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के मामले में किसी को वस्तु के लाभ से वंचित करना संभव नहीं है (वे अवर्ज्य हैं)। चूँकि भुगतान नहीं करने वाले उपयोगकर्ताओं को वंचित नहीं किया जा सकता है, इसीलिए सार्वजनिक वस्तुओं पर शुल्क लगाना कठिन अथवा असंभव होता है। इसके कारण "मुफ़्तखोरी" की समस्या उत्पन्न होती है। उपभोक्ता उन वस्तुओं के लिए अपनी इच्छा से किसी भी कीमत का भुगतान नहीं करेंगे जो कि उन्हें नि:शुल्क प्राप्त होती हैं तथा जो उपभोग की जाने वाली संपत्ति किसी व्यक्ति-विशेष के स्वामित्व में नहीं होती। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कड़ी टूट जाती है और सरकार को इस प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध कराने के लिए निश्चित रूप से पहल करनी पड़ती है। यद्यपि सार्वजनिक प्रावधान वैसा नहीं होता है जैसाकि सार्वजनिक उत्पादन। *सार्वजनिक प्रावधान* का तात्पर्य है कि इनका वित्त प्रबंधन बजट के माध्यम से होता है तथा बिना किसी प्रत्यक्ष भुगतान के मुफ़्त में उपलब्ध होता है। इन वस्तुओं का *उत्पादन* पूर्णत: सरकारी प्रबंधन के अंतर्गत हो सकता है अथवा निजी क्षेत्र के द्वारा।

इस अध्याय का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत है। खंड 5.1 में सरकार के राजस्व के स्रोत और सरकारी व्यय के क्षेत्र को प्रदर्शित करने के लिए सरकारी बजट के घटकों को प्रस्तुत किया गया है। खंड 5.2 में राजस्व से व्यय अधिक होने की दशा में सरकारी घाटा के मुद्दों पर चर्चा की गयी है। खंड 5.3 पूर्ववर्णित आय-व्यय दृष्टिकोण के तहत राजकोषीय नीति और गुणक प्रक्रम का उल्लेख किया गया है। घाटे की पूर्ति के लिए सरकारी ऋण-ग्रहण से ऋण संचय होता है, जिस ऋण को सरकार धारण करती है। इस अध्याय के अंत में ऋण के मुद्दों का विश्लेषण किया गया है।

5.1 सरकारी बजट के घटक

भारत में प्रत्येक वित्तीय वर्ष, जो 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है, के संबंध में सरकार की अनुमानित प्राप्तियों और व्ययों का विवरण संसद के समक्ष प्रस्तुत करना एक संवैधानिक अनिवार्यता (अनुच्छेद 112) है। इस 'वार्षिक वित्तीय विवरण' से मुख्य बजट दस्तावेज़ बनता है। इसके अतिरिक्त बजट में राजस्व लेखा पर व्यय और अन्य प्रकार के व्यय में अवश्य ही अंतर होना चाहिए। अत: बजट दो प्रकार के होते हैं: (i) राजस्व बजट (ii) पूँजीगत बजट।

5.1.1 राजस्व लेखा

राजस्व बजट में सरकार की चालू प्राप्तियाँ और उन प्राप्तियों से किये जाने वाले व्यय के विवरण को दर्शाया जाता है।

(a) राजस्व प्राप्तियाँ: राजस्व प्राप्तियाँ सरकार की वह प्राप्तियाँ हैं जो गैर-प्रतिदेय हैं अर्थात् इसे पाने के लिए सरकार से पुन: दावा नहीं किया जा सकता है। इसे कर और गैर-कर राजस्व में विभक्त किया जाता है। तालिका 5.1 वित्तीय वर्ष 2006-07 के लिए केन्द्र सरकार की प्राप्तियाँ और व्यय को प्रस्तुत करती है। राजस्व प्राप्तियों को कर और गैर-कर राजस्व में विभक्त किया जाता है। कर राजस्व में कर की प्राप्तियाँ और केंद्र सरकार द्वारा लगाए गए अन्य शुल्क शामिल होते हैं। कर राजस्व जो कि राजस्व प्राप्तियों का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, में मुख्य रूप से प्रत्यक्ष कर जिसका बोझ प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति (व्यक्तिगत आय कर) और फर्म (निगम कर) पर पड़ता है तथा अप्रत्यक्ष कर जैसे—उत्पाद शुल्क (देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं पर लगाए गए शुल्क), सीमा शुल्क (भारत में आयात किये जाने वाली अथवा भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर लगाए गए कर) और सेवा शुल्क[1] शामिल होते हैं। अन्य प्रत्यक्ष करों जैसे, संपत्ति कर, उपहार कर और संपदा शुल्क (अब निरस्त) आदि का राजस्व से होने वाली आय में कभी बहुत महत्त्व नहीं रहा है। इसीलिए इसे बहुधा "कागज़ी कर" ही कहा जाता है। वर्ष 2006-07 में राजस्व प्राप्ति में निगम कर का योगदान सबसे अधिक (30.6 प्रतिशत) रहा है जबकि उत्पाद शुल्क का योगदान (24.9 प्रतिशत) दूसरे स्थान पर रहा है। सकल कर राजस्व में प्रत्यक्ष कर का अंश 1990-91 में 19.1 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 48.8 प्रतिशत हो गया।

पुनर्वितरण के उद्देश्य की प्राप्ति आय पर प्रगतिशील करारोपण के माध्यम से किया जाता है। इसके अंतर्गत जैसे-जैसे आय बढ़ती है, वैसे-वैसे कर की दर ऊँची होती जाती है। फर्मों पर आनुपातिक आधार पर कर लगाए जाते हैं। कर की दर लाभयुक्त आय का एक विशेष अनुपात होती है। जीवन के लिए अनिवार्य वस्तुओं को उत्पाद कर से मुक्त रखा जाता है अथवा उन पर कर की दर निम्न होती है। सुख और अर्ध-विलासिता की वस्तुओं पर सामान्य दर से कर लगाया जाता है, जबकि पूर्ण-विलासिता संबंधी वस्तुओं, तंबाकू और पेट्रोलियम उत्पादों पर कर की दर काफी ऊँची होती है।

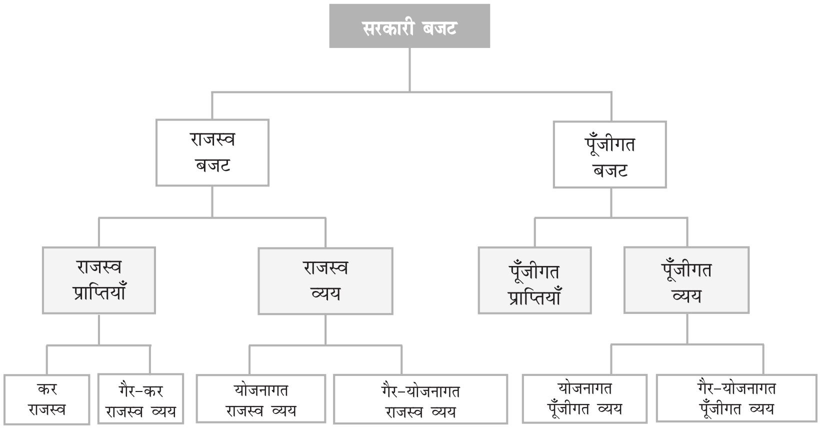

चार्ट 1: सरकारी बजट के घटक

[1] सेवा शुल्क (व्यवस्था कर), दूरभाष सेवा, शेयर दलाल, स्वास्थ्य क्लब, ब्यूटी पार्लर, निर्जल धुलाई सेवा आदि जैसी सेवाओं को सेवा शुल्क के दायरे में वर्ष 1994-95 में लाया गया जो वस्तुओं और सेवाओं के अंतर को कम करता है। हाल के वर्षों में यह राजस्व प्राप्ति का बहुत बड़ा स्रोत है। सेवा शुल्क के दायरे में आने वाली सेवाओं की संख्या 1994-95 में 3 थी, जो बढ़कर 2007-08 में 100 हो गई है।

केंद्र सरकार के गैर-कर राजस्व में मुख्य रूप से, केंद्र सरकार द्वारा जारी ऋण से ब्याज प्राप्तियाँ, सरकार के निवेश से प्राप्त लाभांश और लाभ तथा सरकार द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं से प्राप्त शुल्क और अन्य प्राप्तियाँ आदि शामिल हैं। इसके अंतर्गत विदेशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रदान किये जाने वाले नकद सहायता अनुदान भी शामिल किए जाते हैं।

राजस्व प्राप्ति के आकलन में वित्त विधेयक[2] में किये गए कर प्रस्ताव के प्रभावों पर विचार किया जाता है।

(b) राजस्व व्यय: राजस्व व्यय केन्द्र सरकार का भौतिक या वित्तीय परिसंपत्तियों के सृजन के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों के लिए किया गया व्यय है। राजस्व व्यय का संबंध सरकारी विभागों के सामान्य कार्यों तथा विविध सेवाओं, सरकार द्वारा उपगत ऋण ब्याज अदायगी, राज्य सरकारों और अन्य दलों को प्रदत्त अनुदानों (यद्यपि कुछ अनुदानों से परिसंपत्तियों का सृजन भी हो सकता है) आदि पर किये गए व्यय से होता है।

बजटीय दस्तावेज में कुल राजस्व व्यय को **योजनागत** और **गैर-योजनागत व्यय** मदों में बाँटा जाता है। योजनागत राजस्वगत व्यय का संबंध केंद्रीय योजनाओं (पंचवर्षीय योजनाओं) और राज्यों तथा संघ-शासित प्रदेशों की योजना के लिए केंद्रीय सहायता से है। गैर-योजनागत व्यय राजस्व व्यय का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसमें सरकार द्वारा प्रदत्त सामान्य, आर्थिक और सामाजिक सेवाओं पर व्यापक व्यय शामिल होते हैं। गैर-योजनागत व्यय के प्रमुख मदों में ब्याज अदायगी, प्रतिरक्षा सेवाएँ, उपदान, वेतन और पेंशन आते हैं।

बाज़ार ऋणों, बाह्य ऋणों और विविध आरक्षित निधियों पर ब्याज अदायगी गैर-योजनागत राजस्व व्यय का एक सबसे बड़ा घटक होता है। प्रतिरक्षा व्यय गैर-योजनागत व्यय का दूसरा सबसे बड़ा घटक है और इस अर्थ में यह प्रतिबद्ध व्यय है कि राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित इस मद में अधिक कटौती का क्षेत्र अत्यल्प है। उपदान एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत उपकरण है, जिसका उद्देश्य कल्याण में वृद्धि करना है। सार्वजनिक वस्तुओं और शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी सेवाओं का अल्पमूल्यन के माध्यम से अव्यक्त उपदान प्रदान करने के अतिरिक्त सरकार निर्यात, ऋण पर ब्याज, खाद्य पदार्थ और उर्वरकों जैसे मदों पर व्यक्त रूप से भी उपदान प्रदान करती है। सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में उपदानों की मात्रा 1990-91 में 1.7 प्रतिशत से घटकर 2004-05 में 1.45 प्रतिशत तथा 2006-07 में 1.3 प्रतिशत हो गयी।

5.1.2 पूँजीगत लेखा

पूँजीगत बजट केंद्रीय सरकार की परिसंपत्तियों के साथ-साथ दायित्वों से संबंधित राशियों का वह लेखा है, जो पूँजी में होने वाले परिवर्तनों का ध्यान रखता है। इसके अंतर्गत सरकार की पूँजीगत प्राप्तियाँ एवं पूँजीगत व्यय शामिल होती हैं। यह सरकार की *वित्तीय आवश्यकताओं* तथा उनके *वित्तीय प्रबंधन* को दर्शाते हैं।

(a) पूँजीगत प्राप्तियाँ: सरकार की वे सभी प्राप्तियाँ जो दायित्वों का सृजन या वित्तीय परिसंपत्तियों को कम करती हैं पूँजीगत प्राप्तियाँ कहलाती हैं। पूँजीगत प्राप्तियों की मुख्य मदें सार्वजनिक कर्ज़ है, जिसे सरकार द्वारा जनता से लिया जाता है। इसे बाज़ार ऋण-ग्रहण कहते हैं। इसमें ट्रेज़री बिल की

[2] वित्त विधेयक जिसे वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ ही प्रस्तुत किया जाता है, के अंतर्गत बजट में किए गए कर प्रस्तावों को लागू करने, निरस्त करने, छूट देने, बदलने अथवा विनियमन संबंधी विषयों का विस्तार से वर्णन होता है।

बिक्री के द्वारा रिज़र्व बैंक और व्यावसायिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से सरकार द्वारा ऋण-ग्रहण, विदेशी सरकारों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से प्राप्त कर्ज़ और केंद्र सरकार द्वारा प्रदत्त ऋणों की वसूली आदि शामिल हैं। अन्य मदों में लघु बचतें (डाकघर बचत खाता, राष्ट्रीय बचत प्रमाण-पत्र इत्यादि), भविष्य निधि और सार्वजनिक उपक्रम (पी.एस.यू.) के शेयरों की बिक्री से प्राप्त निवल प्राप्तियाँ हैं। इसे सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रम का विनिवेश कहा जाता है।

(b) पूँजीगत व्यय: ये सरकार के वे व्यय हैं जिसके परिणामस्वरूप भौतिक या वित्तीय परिसंपत्तियों का सृजन या वित्तीय दायित्वों में कमी होती है। पूँजीगत व्यय के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण, भवन निर्माण, मशीनरी, उपकरण, शेयरों में निवेश और केंद्र सरकार के द्वारा राज्य सरकारों एवं संघ-शासित प्रदेशों, सार्वजनिक उपक्रमों तथा अन्य पक्षों को प्रदान किये गए ऋण और अग्रिम संबंधी व्ययों को शामिल किया जाता है। पूँजीगत व्यय को भी बजट दस्तावेज में **योजना** और **गैर-योजनागत व्यय**[3] के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इसे तालिका 5.1 में क्रम संख्या 6 में दिखाया गया है। वित्त व्यय के अंतर्गत योजना एवं गैर-योजना में अंतर स्थापित किया गया है। इस वर्गीकरण के अनुसार, योजनागत पूँजीगत व्यय का संबंध राजस्व-व्यय के समान, केंद्रीय योजना और राज्य तथा संघ-शासित प्रदेशों की योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता से होता है। गैर-योजनागत पूँजीगत व्यय में सरकार द्वारा प्रदत्त विविध सामान्य, सामाजिक और आर्थिक सेवाओं पर व्यय शामिल होते हैं।

बजट प्राप्तियों और व्ययों का एक विवरण मात्र नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत के कारण बजट एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय नीति का विवरण बन गया है। बजट के संबंध में तर्क दिया जाता है कि यह देश की अर्थव्यवस्था के स्वरूप का प्रतिबिंब है तथा इससे देश के आर्थिक जीवन का स्वरूप निर्धारित होता है। वित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003[4] के द्वारा बजट के साथ तीन नीतिगत विवरणों का होना अनिवार्य है। मध्यावधि वित्तीय नीति विवरण में विशिष्ट वित्तीय सूचकों के लिए तीन वर्षीय चल लक्ष्य रहता है, जो इस बात का परीक्षण करता है कि क्या धारणीय आधार पर राजस्व प्राप्तियों के माध्यम से राजस्व व्यय किया जा सकता है और बाज़ार ऋण-ग्रहण सहित पूँजीगत प्राप्तियों का उपयोग कितनी उत्पादकता के रूप में किया जा रहा है। राजकोषीय नीति संबंधी विवरण वर्तमान नीतियों का परीक्षण और महत्त्वपूर्ण वित्तीय उपायों में किसी प्रकार के विचलन के औचित्य का निर्धारण करते हुए वित्तीय क्षेत्र में सरकार के प्राथमिकताओं को तय करता है। समष्टि अर्थशास्त्रीय रूपरेखा संबंधी विवरण में सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर, केंद्र सरकार के वित्तीय संतुलन और बाह्य संतुलन[5] के संबंध में अर्थव्यवस्था के भविष्य का आकलन किया जाता है।

---

[3] इस प्रकार के वर्गीकरण को पेश करने के विरुद्ध एक स्थिति यह है कि नई योजना/परियोजना की शुरुआत करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति वर्तमान क्षमता एवं सेवा स्तरों के रख-रखाव का अनदेखा करती है। गैर-योजना व्यय में निहित अपव्यय के कारण यह जानकारी अप्रत्यक्ष हो जाती है जो शिक्षा और स्वास्थ्य (जहाँ वेतन की समाविष्टि एक महत्वपूर्ण तत्त्व है) जैसे सामाजिक क्षेत्रकों के बीच संसाधन के बँटवारे पर विपरीत प्रभाव डालती है।

[4] बॉक्स 5.1 सरकारी वित्त के लिए विधि निर्माण और उसके तात्पर्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है।

[5] वर्ष 2005-06 के भारतीय बजट में बजटीय विनिधान की लिंग संवेदनशीलता को विशेष महत्त्व देते हुए एक विवरण प्रस्तुत किया गया है। लिंगगत बजट सरकार की लिंग संबंधी वचनबद्धताओं को बजटीय वचनबद्धता में रूपांतरित करने का एक ओर सार्थक प्रयास है, जिसमें स्त्री सशक्तिकरण के लिए विशेष पहल और स्त्रियों के लिए विभाजित संसाधनों के उपयोग का परीक्षण और सार्वजनिक व्यय के प्रभाव तथा महिलाओं के लिए सरकार की नीतियाँ शामिल हैं। वर्ष 2006-07 के बजट में पूर्व बजट विवरण को विस्तार प्रदान किया गया है।

तालिका 5.1: **केंद्रीय सरकार की प्राप्तियाँ और व्यय, 2008-09**

		(सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में)
1.	राजस्व प्राप्तियाँ (a + b)	10.6
	(a) कर राजस्व (राज्यों के निवल अंश)	8.8
	(b) गैर-कर राजस्व	1.8
2.	राजस्व खर्च	15.1
	जिसका	
	(a) ब्याज अदायगियाँ	3.6
	(b) प्रमुख उपदान	2.3
	(c) रक्षा व्यय	1.4
3.	राजस्व घाटा (2 – 1)	4.5
4.	पूँजीगत प्राप्तियाँ	6.4
	जिसका	
	(a) ऋण वसूली	0.2
	(b) अन्य प्राप्तियाँ (मुख्यत: सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश)	0.0
	(c) ऋण ग्रहण एवं अन्य दायित्व	6.1
5.	पूँजीगत खर्च	1.8
6.	कुल खर्च [2 + 5 = 6(a) + 6(b)]	16.9
	(a) योजनागत व्यय	5.3
	(b) गैर-योजनागत व्यय	11.6
7.	राजकोषीय घाटा	6.1
8.	प्राथमिक घाटा [7 – 2 = (a)]	2.5

स्रोत: *आर्थिक सर्वेक्षण 2008-09*

5.1.3 सरकारी घाटे की माप

जब सरकार राजस्व प्राप्ति से अधिक व्यय करती है, तो इस स्थिति को बजटीय घाटा[6] कहते हैं। इस घाटे की पूर्ति के लिए कई उपाय किए जाते हैं, जिनका किसी अर्थव्यवस्था पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

(a) राजस्व घाटा: राजस्व घाटा सरकार की राजस्व प्राप्तियों के ऊपर राजस्व व्यय के अधिशेष को बताता है।

राजस्व घाटा = राजस्व व्यय – राजस्व प्राप्तियाँ

तालिका 5.1 में क्रम संख्या 3 में यह दिखाया गया है कि वर्ष 2008-09 में राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 4.5 प्रतिशत था। (15.1-10.6) राजस्व घाटे में केवल उन्हीं लेन-देनों को शामिल किया जाता है, जिनसे सरकार के वर्तमान आय और व्यय पर प्रभाव पड़ता है। जब

[6] औपचारिक रूप से यह कुल प्राप्तियों (राजस्व और पूँजीगत दोनों) के ऊपर कुल व्यय (राजस्व और पूँजीगत दोनों) के अधिशेष को बताता है। वर्ष 1997-98 के बजट से भारत में बजटीय घाटा को प्रदर्शित करने की परंपरा को छोड़ दिया गया है।

सरकार को राजस्व घाटा प्राप्त होता है, तो इससे संकेत मिलता है कि सरकार निर्बचत कर रही है और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की बचतों का उपयोग अपने उपभोग संबंधी व्यय के कुछ हिस्सो को पूरा करने के लिए कर रही है। इस स्थिति में, सरकार को न केवल अपने निवेश के लिए अपितु अपने उपभोग संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी ऋण-ग्रहण करना पड़ेगा। इससे ऋणों और ब्याज दायित्वों का निर्माण होगा और सरकार को अंततोगत्वा अपने व्यय में भी कटौती करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। चूँकि राजस्व व्यय का एक बड़ा भाग व्यय के लिए प्रतिबद्ध होता है, इसीलिए इसमें कटौती नहीं की जाएगी। बहुधा सरकार उत्पादक पूँजीगत व्यय अथवा कल्याण संबंधी व्यय में कटौती करती है। इसके परिणामस्वरूप विकास की गति धीमी होती है और कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(b) राजकोषीय घाटा: राजकोषीय घाटा सरकार के कुल व्यय और ऋण-ग्रहण को छोड़कर कुल प्राप्तियों का अंतर है।

सकल राजकोषीय घाटा = कुल व्यय – (राजस्व प्राप्तियाँ + गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ)

गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ ऐसी प्राप्तियाँ हैं, जो ऋण-ग्रहण के अंतर्गत नहीं आती हैं, इसीलिए इससे ऋण में वृद्धि नहीं होती है। इसके उदाहरण हैं–ऋणों की वसूली और सार्वजनिक उपक्रमों की बिक्री से प्राप्त राशि। तालिका 5.1 में हम देखते हैं कि गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ सकल घरेलू उत्पाद के 0.3 प्रतिशत के बराबर है। यह कुल पूँजीगत प्राप्तियों में से उधार और अन्य दायित्वों को घटाकर (6.4–6.1) प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार, राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 6.1 प्रतिशत प्रतीत होता है। राजकोषीय घाटे का वित्त पोषण ऋण-ग्रहण के द्वारा ही किया जायेगा। अत: इससे सभी स्रोतों से सरकार के ऋण-ग्रहण संबंधी आवश्यकताओं का पता चलता है। वित्तीय पक्ष से,

सकल राजकोषीय घाटा = निवल घरेलू ऋण-ग्रहण + भारतीय रिज़र्व बैंक से ऋण-ग्रहण + विदेशों से ऋण-ग्रहण।

निवल घरेलू ऋण-ग्रहण के अंतर्गत ऋण उपकरणों (उदाहरणार्थ, विविध लघु बचत योजनाएँ) के माध्यम से सीधे जनता से प्राप्त ऋण और वैधानिक तरलता अनुपात (एस.एल.आर.) के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक बैंकों से प्राप्त ऋण आते हैं। सकल राजकोषीय घाटा अर्थव्यवस्था के स्थायित्व और सार्वजनिक क्षेत्र की सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था के लिए एक निर्णायक चर है। इस प्रकार सकल राजकोषीय घाटा को मापा जा सकता है। जैसा कि ऊपर देखा गया है राजस्व घाटा राजकोषीय घाटा का एक भाग है (राजकोषीय घाटा = राजस्व घाटा + पूँजीगत व्यय – गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ)। राजकोषीय घाटे में राजस्व घाटे का एक बड़ा अंश यह दर्शाता है कि उधार का एक बड़ा हिस्सा उपभोग व्यय के लिए उपयोग किया जाता है न कि निवेश के लिए।

(c) प्राथमिक घाटा: ध्यातव्य है कि सरकार की ऋण-ग्रहण आवश्यकताओं में संचित ऋण पर दायित्व शामिल होते हैं। प्राथमिक घाटे के माप का लक्ष्य वर्तमान राजकोषीय असंतुलन पर प्रकाश डालना है। वर्तमान व्यय के राजस्व से अधिक होने के कारण होने वाले ऋण-ग्रहण के आकलन के लिए हम प्राथमिक घाटे की परिकलन करते हैं। सरल भाषा में यह वह शेष है, जो राजकोषीय घाटे में से ब्याज अदायगी को घटाने पर प्राप्त होता है।

सकल प्राथमिक घाटा = सकल राजकोषीय घाटा – निवल ब्याज दायित्व

निवल ब्याज दायित्वों में निवल घरेलू परिदाय पर सरकार द्वारा प्राप्त ब्याज प्राप्तियों से ब्याज अदायगी करने पर शेष राशि आती है।

5.2 राजकोषीय नीति

कीन्ज़ की पुस्तक द *जेनरल थ्योरी ऑफ इम्प्लॉयमेंट इंटरेस्ट एंड मनी* में प्रतिपादित विचारों में मुख्य रूप से यह भी है कि सरकार की राजकोषीय नीति का प्रयोग निर्गत और रोजगार के स्तर को स्थिर करने के लिए किया जाना चाहिए। व्यय और करों में परिवर्तनों के माध्यम से सरकार निर्गत और आय में वृद्धि करने का प्रयास करती है, जिसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के उच्चावचन को स्थिर करना होता है। इस प्रक्रिया में राजकोषीय नीति से एक *आधिक्य* (जब कुल प्राप्तियाँ व्यय से अधिक होती हैं) अथवा एक *संतुलित बजट* (जब व्यय और प्राप्तियाँ बराबर हों) के बजाय एक घाटे के बजट का सृजन होता है। आय निर्धारण के पूर्व विश्लेषण में सरकारी क्षेत्र को शामिल करने से उत्पन्न प्रभावों का अध्ययन हम आगे करेंगे।

राजकोषीय नीति अपने तीन मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने की कैसे कोशिश करती है?

सरकार दो विशिष्ट विधियों से प्रत्यक्ष रूप से संतुलित आय के स्तर पर प्रभाव डालती है: सरकार द्वारा क्रय की गयी वस्तुओं और सेवाओं (G) से समस्त माँग में वृद्धि होती है और करों तथा अंतरणों से आय (Y) और प्रयोज्य आय (YD)–परिवार के उपभोग और बचत के लिए उपलब्ध आय (D)–का संबंध प्रभावित होता है।

$\bar{C}$ TR

सर्वप्रथम हम करों को लें। हम कल्पना करते हैं कि सरकार जो कर लगाती है, वह आय पर निर्भर नहीं करता है। इसे *इकमुश्त* कर कहते हैं, जो T के बराबर होता है।

हम कल्पना करते हैं कि पूरे विश्लेषण में सरकार एक नियत मात्रा में अंतरण $\overline{TR}$ करती है। अब उपभोग फलन इस प्रकार है,

$$C = \bar{C} + cYD = \quad + c(Y - T + \quad) \text{ यहाँ } YD = \text{प्रयोज्य आय} \qquad (5.1)$$

हम जानते हैं कि करों से प्रयोज्य आय और उपभोग में कमी आती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति 1 लाख रुपये अर्जित करता है और उसे 10,000 रुपये कर अदा करना पड़ता है, तो उसकी प्रयोज्य आय और उस व्यक्ति की आय जो 90,000 रुपये अर्जित करता है किंतु कोई कर अदा नहीं करता है, के बराबर होगी। सरकार को शामिल करने पर समस्त माँग की परिवर्धित परिभाषा होगी:

$$AD = \bar{C} + c(Y - T + \quad) + I + G \qquad (5.2)$$

ग्राफीय रूप में, हम पाते हैं कि इकमुश्त कर से उपभोग अनुसूची समानांतर रूप से नीचे की ओर शिफ्ट होती है और इस कारण समस्त माँग वक्र में भी इसी तरह का शिफ्ट होता है। उत्पाद बाज़ार में आय निर्धारण की शर्तें Y= समस्त माँग होगी, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{C} + c(Y - T + \quad) + I + G \qquad (5.3)$$

आय के संतुलन स्तर का हल प्राप्त करने पर हमें प्राप्त होगा,

$$Y^* = \frac{1}{1-c}(\quad - cT + c \quad + I + G) \qquad (5.4)$$

5.2.1 सरकारी व्यय में परिवर्तन

अब हम करों को स्थिर रखकर सरकारी खरीद (G) में वृद्धि के प्रभावों पर विचार करें। जब T अर्थात इकमुश्त कर से G अर्थात सरकारी खरीद अधिक होती है, तो सरकार घाटे का वहन करती है। क्योंकि G समस्त व्यय का घटक है। योजनाबद्ध समस्त व्यय में वृद्धि होगी। समस्त माँग अनुसूची में ऊपर की ओर AD' तक शिफ्ट होती है। निर्गत के प्रारंभिक स्तर पर माँग, पूर्ति से अधिक होती है और फर्म उत्पादन में विस्तार करती है। नया संतुलन E' पर स्थापित होता है। गुणक युक्ति (अध्याय 4 में वर्णित) कार्य करती है। सरकारी व्यय गुणक निम्नवत होता है

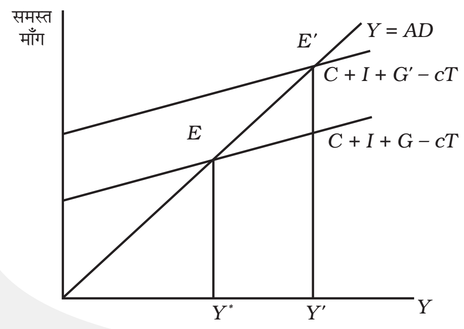

रेखाचित्र 5.1

उच्चतर सरकारी व्यय का प्रभाव

$$\Delta Y = \frac{1}{1-c}\Delta G \quad (5.5)$$

या

$$= \quad (5.6)$$

रेखाचित्र 5.1 में सरकारी व्यय G से बढ़कर G' हो जाता है और इस कारण संतुलन आय Y से बढ़कर Y' हो जाती है।

5.2.2 करों में परिवर्तन

हम पाते हैं कि आय के प्रत्येक स्तर पर करों में कटौती से प्रयोज्य आय ($Y–T$) में वृद्धि होती है। फलस्वरूप समस्त व्यय अनुसूची में ऊपर की ओर शिफ्ट होता है जो, करों में कमी का अंश c होता है। इसे रेखाचित्र 5.2 में दर्शाया गया है।

समीकरण 5.3 से हमें प्राप्त होता है–

$$\Delta Y^* = \quad (-c)\,\Delta T \quad (5.7)$$

कर गुणक

$$= \quad = \quad (5.8)$$

करों में कटौती (वृद्धि) से उपभोग और निर्गत में *वृद्धि (कमी)* होती है क्योंकि कर गुणक एक ऋणात्मक गुणक होता है। समीकरण 5.6 और 5.8 की तुलना करने पर हम पाते हैं कि सरकार के व्यय गुणक की तुलना में कर गुणक का निरपेक्ष मूल्य अपेक्षाकृत अल्प होता है। क्योंकि सरकारी व्यय में वृद्धि से कुल व्यय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जबकि गुणक प्रक्रिया में करों का प्रवेश प्रयोज्य

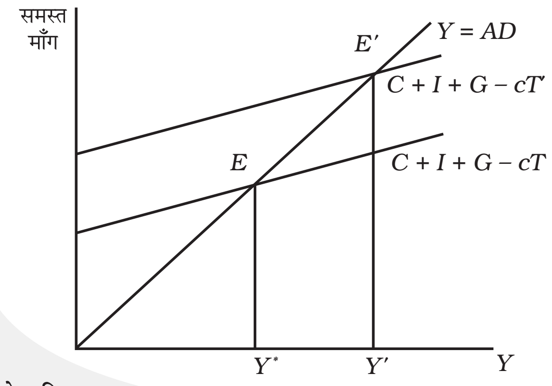

रेखाचित्र 5.2

करों में कटौती का प्रभाव

लाचार व्यक्ति क्यों रो रहा है? इसके आँसू पोंछने के कुछ उपाय बताएँ।

आय पर उनके प्रभाव के माध्यम से होता है, जिसका कि परिवार के उपभोग (जो कुल व्यय का अंश है) पर प्रभाव पड़ता है। अतः करों में ΔT की कटौती से उपभोग और इस प्रकार कुल व्यय में पहले $c\Delta T$ की वृद्धि होती है। दोनों गुणकों के अंतर को जानने के लिए निम्नलिखित उदाहरण पर विचार कीजिए।

उदाहरण 5.1

मान लीजिए कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.8 है। तब सरकारी व्यय का गुणक = = = 5 होता है। सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि के लिए संतुलन आय में 500 (ΔG = 5 × 100) की वृद्धि होगी। कर गुणक = = = – 4 है। 100 (ΔT= – 100) की कर कटौती से संतुलन आय में 400 (ΔT= – 4 × –100) की वृद्धि होगी। अतः इस स्थिति में संतुलन आय में वृद्धि G के अंतर्गत होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरूप हुई वृद्धि से कम होती है।

वर्तमान ढाँचे में यदि हम सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के भिन्न-भिन्न मूल्यों को लें और दोनों गुणकों के मूल्यों की गणना करें, तो हम पाएँगे कि सरकारी व्यय गुणक की तुलना में कर गुणक का निरपेक्ष मूल्य हमेशा इकाई कम होता है। इसके रोचक निहितार्थ हैं। यदि सरकारी व्यय में वृद्धि के बराबर ही करों में वृद्धि होती है ताकि बजट संतुलित रहे, तो निर्गत में सरकारी व्यय में वृद्धि की मात्रा के बराबर वृद्धि होगी। दोनों नीतिगत गुणकों को जोड़ने पर प्राप्त होता है,

संतुलित बजट गुणक = = + = = 1 (5.9)

इकाई संतुलित बजट गुणक से यह संकेत मिलता है कि सरकार के वित्त में 100 की वृद्धि से करों में 100 की वृद्धि होने पर आय में भी ठीक 100 की वृद्धि होती है। इसे उदाहरण 1 में देखा जा सकता है, कि जब सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि होती है, तो निर्गत में 500 की वृद्धि होती है। कर में वृद्धि से आय में 400 की *कमी* होती है और आय में निवल वृद्धि 100 के बराबर होती है। संतुलित आय का तात्पर्य उस अंतिम आय से है, जिसे पर्याप्त लंबी अवधि में गुणक द्वारा अपने सभी चक्र पूरे करने के बाद प्राप्त करते हैं। हम पाते हैं कि निर्गत में ठीक उतनी ही वृद्धि होती है,

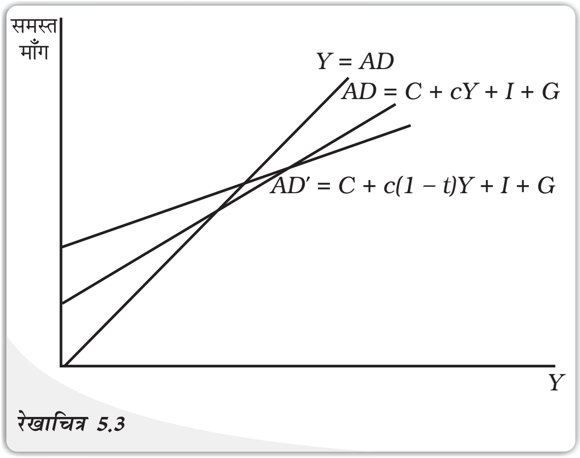

रेखाचित्र 5.3

सरकार और समस्त माँग (आनुपातिक कर समस्त माँग (AD) अनुसूची को अपेक्षाकृत सपाट बनाता है।)

जितनी वृद्धि सरकारी व्यय में। यहाँ करों में वृद्धि के कारण कोई प्रेरित उपभोग व्यय नहीं होता है। यह देखने के लिए कि यहाँ क्या होना चाहिए, हम गुणक प्रक्रम का परीक्षण करते हैं। सरकारी व्यय में एक निश्चित मात्रा में वृद्धि से आय प्रत्यक्ष रूप से उसी मात्रा में बढ़ती है और फिर अप्रत्यक्ष रूप से गुणक शृंखला के माध्यम से आय में वृद्धि इस प्रकार होती है:

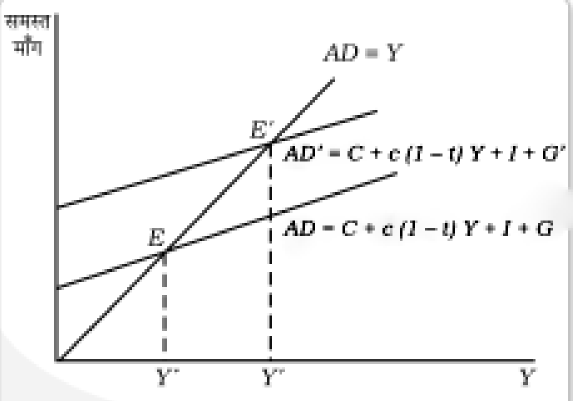

रेखाचित्र 5.4

सरकारी व्यय में वृद्धि (आनुपातिक करों से)

$$\Delta Y = \Delta G + c\Delta G + c^2\Delta G + \ldots = \Delta G\,(1 + c + c^2 + \ldots) \qquad (5.10)$$

किंतु कर वृद्धि का गुणक प्रक्रम में तभी प्रवेश होता है, जब प्रयोज्य आय में कटौती से उपभोग में कमी करों में c गुणा कटौती के बराबर होती है। अतः कर वृद्धि का आय पर प्रभाव इस प्रकार प्राप्त होता है:

$$\Delta Y = -\,c\Delta T - c^2\Delta T + \ldots = -\,\Delta T\,(c + c^2 + \ldots) \qquad (5.11)$$

दोनों के अंतर से आय पर निवल प्रभाव प्राप्त होता है। चूँकि $\Delta G = \Delta T$, (5.10) और (5.11) से हमें $\Delta Y = \Delta G$ प्राप्त होता है, अर्थात आय में उतनी ही मात्रा में वृद्धि होती है जितनी कि सरकारी व्यय में और संतुलित बजट गुणक इकाई के बराबर होता है। इस गुणक को समीकरण 5.3 से भी निम्न प्रकार व्युत्पन्न किया जा सकता है।

$\Delta Y = \Delta \quad + c\,(\Delta Y - \Delta T)$ *चूँकि निवेश में परिवर्तन नहीं होता है* $(\Delta I = 0)$ (5.12)

चूँकि $\Delta \quad = \Delta T$ इसीलिए हम पाते हैं कि,

$$= \qquad = 1 \qquad (5.13)$$

आनुपातिक करों की स्थिति: अधिक यथार्थ मान्यता यह होगी कि सरकार एक नियत भिन्न t के रूप में करों से आय संग्रह करती है ताकि $T = tY$ हो। *आनुपातिक करों* के साथ उपभोग फलन निम्नांकित है:

$$C = \quad + c\,(Y - tY + \quad)$$

$$= \overline{C} + c\,(1 - t)\,Y + c \qquad (5.14)$$

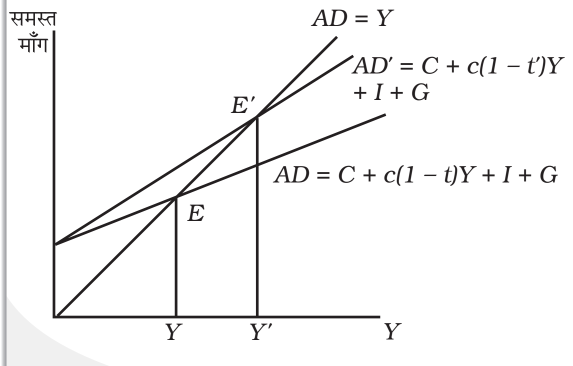

रेखाचित्र 5.5

आनुपातिक कर के दर में कटौती का प्रभाव

उल्लेखनीय है कि आनुपातिक करों से आय के प्रत्येक स्तर पर न केवल उपभोग निम्न होता है, बल्कि उपभोग फलन की प्रवणता भी निम्न होती है। आय से सीमांत

उपभोग प्रवृत्ति $c\,(1 - t)$ तक गिरती है। नई समस्त माँग अनुसूची AD' का अंत:खंड बड़ा किंतु सपाट होता है।

अब हमारे पास

$$AD = \bar{C} + c\,(1 - t)Y + c \quad + I + G = \bar{A} + c\,(1 - t)Y \qquad (5.15)$$

जहाँ = स्वायत्त व्यय है और + c + $I + G$ के बराबर होता है। उत्पाद बाज़ार में आय निर्धारण की शर्त $Y = AD$ होती है, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{A} + c\,(1 - t)Y \qquad (5.16)$$

आय के संतुलन स्तर के लिए हल करने पर

$$Y^* = \qquad (5.17)$$

ताकि गुणक निम्नांकित हो

$$= \qquad (5.18)$$

इकमुश्त कर की स्थिति में गुणक के मूल्य से इसकी तुलना करने पर हमें अल्प मूल्य प्राप्त होता है। इकमुश्त कर की स्थिति में सरकारी व्यय में वृद्धि के फलस्वरूप जब आय में वृद्धि होती है तो उपभोग में आय में वृद्धि की c गुणा वृद्धि होती है। आनुपातिक कर के साथ उपभोग में कम वृद्धि होती है, $(c - ct = c\,(1 - t))$ गुणा आय में वृद्धि होती है।

G में परिवर्तन के लिए अब गुणक निम्नांकित होगा

$$\Delta Y = \Delta \quad + c\,(1 - t)\Delta Y \quad (5.19)$$

$$\Delta Y = \qquad (5.20)$$

आय में Y^* से Y' की वृद्धि होती है।

परिणामस्वरूप करों में ह्रास का प्रभाव पड़ता है जिससे कि उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। AD वक्र में ऊपर की ओर AD' तक शिफ्ट होता है। आय के प्रारंभिक स्तर पर वस्तु की समस्त माँग निर्गत से अधिक होती है, क्योंकि कर में कटौती के कारण उपभोग में वृद्धि होती है। अब आय का नया उच्च स्तर Y' है।

उदाहरण 5.2

उदाहरण 5.1 में यदि हम कर की दर 0.25 लेते हैं, तो हम पाते हैं कि आय में प्रत्येक इकाई की वृद्धि के लिए उपभोग में पहले के 0.80 के स्थान पर 0.60 $(c\,(1 - t) = 0.8 \times 0.75)$ की वृद्धि होगी। अत: पहले की तुलना में उपभोग में कम वृद्धि होगी। सरकारी व्यय गुणक = = = 2.5 होगा जो इकमुश्त करों से प्राप्त राशि की तुलना में कम है। यदि सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि हो, तो निर्गत में सरकारी व्यय में वृद्धि की गुणक गुणा वृद्धि होगी अर्थात $2.5 \times 100 = 250$। यह इकमुश्त करों की दशा में निर्गत में वृद्धि से कम है।

अत: आनुपातिक आय कर एक **स्वत:स्थिरक** अर्थात आघात अवशोषक की प्रकृति के रूप में कार्य करता है, क्योंकि इससे सकल घरेलू उत्पाद में उच्चावचन के प्रति प्रयोज्य आय और उपभोक्ता का व्यय कम संवेदनशील होता है। जब सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होती है तो प्रयोज्य

आय भी बढ़ती है किंतु सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से कम, क्योंकि इसका एक अंश करों के रूप में निकल जाता है। इससे उपभोग व्यय में उपरिमुख उच्चावचन को सीमित करने में मदद मिलती है। अमंदी के दौरान जब सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट आती है, तो प्रयोज्य आय कम तेज़ी से गिरती है और उपभोग में उतनी गिरावट नहीं आती है जितनी कर दायित्व नियत होने की स्थिति में आनी चाहिए। इससे समस्त माँग में कमी आती है और अर्थव्यवस्था स्थिरीकरण की स्थिति में आ जाती है।

उल्लेखनीय है कि निवेश माँग में अनिच्छित शिफ्ट के प्रभावों को संतुलित करने में इन राजकोषीय नीतिगत उपकरणों में भिन्नता हो सकती है। अर्थात यदि निवेश में I_0 से I_1 तक गिरावट आती है, तो सरकारी व्यय में G_0 से G_1 की वृद्धि हो, ताकि स्वायत्त खर्च ($C + I_0 + G_0 = C + I_1 + G_1$) और संतुलन आय एक समान रहेगा। राजकोषीय प्रणाली के अंतर्निहित स्वतः स्थिरक अभिलक्षणों से अलग करने के लिए इसे **स्वनिर्णयगत राजकोषीय नीति** कहा जाता है, जो कि अर्थव्यवस्था को स्थिर करने की एक सुविचारित कार्रवाई है। जैसाकि पहले चर्चा की गई है कि आनुपातिक करों से अर्थव्यवस्था को उर्ध्वगामी और अधोगामी संचलन के विरुद्ध स्थिरीकरण की स्थिति में लाने में मदद मिलती है। कल्याण अंतरणों से भी आय स्थिरीकरण में मदद मिलती है। तेज़ी के दौरान जब रोज़गार अधिक होता है, उपभोग व्यय के ऊँचे स्तर पर स्थिरीकरण दबाव बनाने वाले अंतरण अदायगी के लिए वित्त प्रबंधन हेतु संग्रहित कर प्राप्तियों में वृद्धि होती है; विलोमतः चरम मंदी के दौरान इन कल्याणगत अदायगियों से उपभोग धारित रखने में मदद मिलती है। आगे, निजी क्षेत्र में भी *आभ्यंतरिक स्थिरक* होते हैं। अल्पकाल में आय में परिवर्तन के बावजूद निगम अपने लाभांश को कायम रखते हैं और परिवार अपने पूर्व जीवन-स्तर को बनाये रखने का प्रयास करता है। ये सभी किसी निर्णयकर्ता के द्वारा किसी भी कार्रवाई करने की आवश्यकता के बगैर आघात अवशोषक के रूप में कार्य करते हैं। अर्थात ये स्वतः कार्य करते हैं। किंतु आभ्यंतरिक स्थिरक से अर्थव्यवस्था में उच्चावचन को एक अंश मात्र की ही कमी होती है, शेष के लिए सुविचारित नीतिगत पहल किया जाना चाहिए।

अंतरण: हम कल्पना करते हैं कि वस्तुओं एवं सेवाओं पर सरकारी व्यय में वृद्धि के स्थान पर सरकार अंतरण अदायगी कुल राजस्व ( ) में वृद्धि करती है। स्वायत्त व्यय $\bar{A}$, में $c\Delta$ की वृद्धि होगी, अतः निर्गत में वृद्धि होगी, लेकिन यह वृद्धि सरकारी व्यय में वृद्धि की मात्रा से कम होगी क्योंकि अंतरण अदायगी में किसी भी प्रकार की वृद्धि के एक अंश की बचत कर ली जाती है। अंतरण में परिवर्तन के लिए संतुलन आय में परिवर्तन निम्नवत् होगा:

$$\Delta Y = \frac{c}{1-c}\Delta TR \qquad (5.21)$$

अथवा

$$= \qquad (5.22)$$

उदाहरण 5.3

मान लीजिए कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.75 है और कर इकमुश्त है। जब सरकारी खरीद में 20 की वृद्धि होती है, तो संतुलन आय में परिवर्तन $\Delta Y =$ $= 4 \times 20 = 80$ के बराबर

होगा। जब करों में 30 की वृद्धि होगी, तो संतुलन आय में 90 के बराबर ह्रास होगा क्योंकि ΔY = = – 3 × 30 = – 90 अंतरण में 20 की वृद्धि से संतुलन आय में ΔY = = 3 × 20 = 60 वृद्धि होगी। इस प्रकार हम पाते हैं कि आय में वृद्धि सरकारी खरीद में वृद्धि की तुलना में कम होती है।

5.2.3 ऋण

बजटीय घाटे के लिए वित्त पोषण या तो करारोपण या ऋण अथवा नोट छापकर किया जाना चाहिए। सरकार प्राय: ऋण-ग्रहण पर आश्रित रहती है, जिसे सरकारी ऋण कहते हैं। घाटे और ऋण की संकल्पनाओं में निकट संबंध होता है। घाटे को एक *प्रवाह* के रूप में समझा जा सकता है, जिससे ऋण के *स्टॉक* में वृद्धि होती है। यदि सरकार का ऋण-ग्रहण एक वर्ष के बाद दूसरे वर्ष भी जारी रहता है, तो इससे ऋण का संचय होता है और सरकार को ब्याज के रूप में अधिक-से-अधिक भुगतान करना पड़ता है। इस ब्याज अदायगी से ऋण की मात्रा में स्वयं का योगदान होता है।

सरकारी ऋण की समुचित मात्रा का प्रिरिप्रेक्ष्य: इस विषय के दो अंतर्संबंधित पहलू हैं। प्रथम, क्या सरकारी ऋण एक बोझ होता है और द्वितीय, ऋण के लिए वित्तीयन संबंधी विचार। ऋण बोझ की चर्चा करते समय यह ध्यान रहे कि सरकारी ऋण छोटे व्यापारी के ऋण के जैसा नहीं होता। अत: हमें समस्त रूप से विचार करना चाहिए न कि 'आंशिक' रूप से। किसी व्यापारी के विपरीत सरकार करारोपण के द्वारा और नोट छापकर संसाधनों में वृद्धि कर सकती है।

$\frac{-0.75}{1-0.75} \Delta TR$

ऋण-ग्रहण कर सरकार उपभोग का बोझ कम करने के लिए अगली पीढ़ी को हस्तांतरित कर देती है, क्योंकि सरकार आज बंधपत्र जारी कर जनता से जो ऋण-ग्रहण करती है और उसका भुगतान लगभग 20 वर्ष बाद कर में वृद्धि करके कर सकती है। ये कर उन युवा आबादी पर लगाए जा सकते हैं, जिसने अभी काम करना आरंभ ही किया है। उनकी प्रयोज्य आय में ह्रास होगा और इस प्रकार उपभोग में भी कमी आयेगी। अत: ऐसा तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रीय बचत में गिरावट आयेगी। इसके अतिरिक्त, जनता से सरकार द्वारा ऋण-ग्रहण करने से निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध बचत में भी कमी आयेगी। इससे कुछ हद तक पूँजी निर्माण और वृद्धि में भी कमी आयेगी, क्योंकि ऋण को अगली पीढ़ी पर 'बोझ' के रूप में देखा जाता है। परंपरागत तौर पर यह तर्क दिया जाता है कि जब सरकार कर में कटौती करती है और घाटे का बजट बनाती है, तो उपभोक्ता अधिक व्यय करके कर से बचने वाली आय का इस्तेमाल करता है। संभव है कि लोग अल्पद्रष्टा हों और बजटीय घाटे के निहितार्थ को नहीं समझते हों। वे नहीं समझ सकते हैं कि भविष्य में किसी समय सरकार को ऋण और संचित ब्याज का भुगतान करने के लिए करों में वृद्धि करनी पड़ेगी। इस बात की समझ होने के बाद भी वे भविष्य में करों का बोझ अपने ऊपर पड़ने की आशा नहीं करते बल्कि उम्मीद करते हैं कि यह अगली पीढ़ियों पर पड़ेगा।

इसके विरुद्ध तर्क यह है कि उपभोक्ता अग्रदर्शी होते हैं और उनका व्यय न केवल वर्तमान आय पर निर्भर करता है बल्कि वे भविष्य में होने वाली आय की आशा से भी व्यय करते हैं। वे समझेंगे कि आज ऋण लेने से भविष्य में कर उच्च होगा। पुन: उपभोक्ता आने वाली पीढ़ी के बारे में भी चिंतित रहते हैं, क्योंकि आने वाली पीढ़ियाँ वर्तमान पीढ़ी के ही बच्चे या नाती-पोते होते हैं और परिवार जो इस संबंध में निर्णय लेने वाली एक इकाई है, हमेशा विद्यमान रहता है। वे अब अपनी बचत में वृद्धि करेंगे, जिससे सरकार की निर्बचत में वृद्धि पूर्ण रूप से प्रति संतुलित

हो जाएगी और इससे राष्ट्रीय बचत में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इस मत को **रिकार्डो समतुल्यता** कहते हैं। डेबिड रिकार्डो 19वीं शताब्दी के महान अर्थशास्त्रियों में से एक थे, जिन्होंने सबसे पहले कहा था कि उच्च घाटे की स्थिति में लोग अधिक बचत करते हैं। इसे 'समतुल्यता' कहते हैं, क्योंकि यह कहा जाता है कि करारोपण और ऋण-ग्रहण व्यय के लिए समतुल्य वित्त साधन हैं। आज जब सरकार ऋण लेकर व्यय में वृद्धि करती है जिस ऋण का भुगतान भविष्य में करों के द्वारा किया जाएगा, तो अर्थव्यवस्था पर इसका वैसा ही प्रभाव पड़ेगा जैसाकि आज कर में वृद्धि के द्वारा वित्त की व्यवस्था करके सरकारी व्यय में वृद्धि करने से पड़ता है।

प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि "ऋण से कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि हम अपने लिए ऋण-ग्रहण करते हैं।" यही कारण है कि यद्यपि दो पीढ़ियों के बीच संसाधनों का हस्तांतरण होता है, फिर भी क्रय-शक्ति राष्ट्र के अधीन ही रहती है। किंतु विदेशियों से लिया गया कोई भी ऋण एक बोझ होता है, क्योंकि हमें ब्याज अदायगी के अनुरूप वस्तुएँ विदेश भेजनी पड़ती हैं।

घाटे और ऋण के अन्य परिप्रेक्ष्य: घाटे की मुख्य आलोचनाओं में एक यह भी है कि घाटे सदैव स्फीतिकारी होते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब सरकार व्यय में वृद्धि अथवा करों में कटौती करती है, तो समस्त माँग में वृद्धि होती है। फर्म अधिक मात्रा में, जितनी कि वर्तमान कीमत पर माँग की जाती है, उतने का उत्पादन करने में असमर्थ हो सकते हैं। इससे कीमत में वृद्धि हो जायेगी। किंतु यदि संसाधनों का उचित उपयोग न किया गया हो, तो माँग में कमी के कारण निर्गत को रोक लिया जाता है। उच्च राजकोषीय घाटे के साथ माँग ऊँची और निर्गत अत्यधिक होते हैं। इसीलिए इसके स्फीतिकारी होने की आवश्यकता नहीं होती है।

प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि निवेश में कमी से निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध बचत की मात्रा में कमी होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि सरकार अपने घाटे की पूर्ति के लिए बंधपत्र जारी कर निजी लोगों से ऋण—ग्रहण करने का निर्णय लेती है, तो ये बंधपत्र निगम बंधपत्र और निधि की पूर्ति के लिए उपलब्ध अन्य वित्तीय उपकरणों से स्पर्धा करेंगे। यदि कुछ निजी बचतकर्ता बंधपत्र खरीदने का निर्णय करते हैं तो निजी क्षेत्र में निवेश करने के लिए शेष निधि की मात्रा अल्प होगी। इस प्रकार, जब सरकार अर्थव्यवस्था की कुल बचत के शेयर में वृद्धि का दावा करेगी तो कुछ निजी ऋण-ग्रहणकर्ता वित्तीय बाज़ारों के 'जनसमूह में घिर जाएँगे'। किंतु यह ध्यातव्य है कि अर्थव्यवस्था की बचत का प्रवाह तब तक निश्चित नहीं होगा, जब तक हम यह न मान लें कि आय में वृद्धि नहीं हो सकती है। यदि राजकीय घाटे से उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त होगा, तो आय अधिक होगी और बचत में भी वृद्धि होगी। इस स्थिति में सरकार और उद्योग दोनों अधिक-से-अधिक ऋण-ग्रहण कर सकते हैं।

यदि सरकार आधारभूत संरचना के निर्माण में निवेश कर रही है, तो आने वाली पीढ़ियाँ बेहतर स्थिति में होंगी। किंतु इस प्रकार के निवेशों का प्रतिफल ब्याज की दर से निश्चित रूप से अधिक होगा। निर्गत में बढ़ोतरी से ही वास्तविक ऋण का भुगतान किया जा सकता है। तब ऋण को बोझ के रूप में नहीं देखा जाएगा। संपूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास में ऋण वृद्धि को उचित ही माना जाएगा।

घाटे में कटौती: करों में वृद्धि अथवा व्यय में कटौती से सरकारी घाटे में कमी की जा सकती है। भारत में सरकार कर राजस्व में वृद्धि करने के लिए प्रत्यक्ष करों पर ज़्यादा भरोसा करती है (अप्रत्यक्ष कर अपनी प्रकृति में प्रतिगामी होता है और इनका प्रभाव सभी आय समूह के लोगों पर समान रूप से पड़ता है)। सार्वजनिक उपक्रमों के शेयरों की बिक्री के माध्यम से प्राप्तियों में बढ़ोतरी करने का भी एक प्रयास किया गया है। किंतु सरकारी व्यय में कटौती पर विशेष बल दिया

गया है। सरकार के कार्यकलापों को सुनियोजित कार्यक्रमों और सुशासनों के माध्यम से संचालित करने से ही सरकारी व्यय में कटौती की जा सकती है। योजना आयोग के द्वारा हाल में किए गए एक अध्ययन[7] में यह आकलन किया गया है कि गरीबों तक 1 रु॰ का लाभ पहुँचाने के लिए सरकार खाद्य उपदान के रूप में 3.65 रु॰ व्यय करती है। यह व्यय सरकार इस उद्देश्य से करती है कि नकद राशि के अंतरण से लोगों के कल्याण में वृद्धि होगी। सरकार के *कार्यक्षेत्र* को बदलने का दूसरा तरीका यह है कि सरकार जिन क्षेत्रों में कार्य करती रही है, उनमें से कुछ क्षेत्र निकाल दिए जाएँ। कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्धनता निवारण जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार के कार्यक्रमों को रोकने से अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। अनेक देशों में सरकार अत्यधिक घाटे का वहन करती है। पूर्व निर्धारित स्तरों पर व्यय में वृद्धि नहीं करने के लिए सरकार स्वयं पर प्रतिबंधों का आरोपण करती है। (बॉक्स 5.1 में भारत में एफ.आर.बी.एम.ए. की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन है)। उपरोक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए इनका परीक्षण करना होगा। हमें यह ध्यान रखना होगा कि वृहत्तर घाटा हमेशा अधिक विस्तारित राजकोषीय नीति का परिणाम नहीं होता है। समान राजकोषीय नीतियाँ बड़े अथवा छोटे दोनों ही प्रकार के घाटों को जन्म दे सकती हैं, जो अर्थव्यवस्था की स्थिति पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी अर्थव्यवस्था में अमंदी और सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट देखने को मिलती है, तो इसका कारण है कि फर्म और परिवार की जब आय कम होती है, तो वे कम कर अदा करते हैं। तात्पर्य यह है कि अमंदी की स्थिति में घाटे में बढ़ोतरी होती है तथा तेज़ी की स्थिति में कमी, जबकि राजकोषीय नीति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

[7] इसे पुन: एक वर्ष 2009-10 के लिए सूचीबद्ध किया गया है, तीव्र राजस्व व्यय कार्यक्रम और आयोजन के पक्ष में योजना की प्राथमिकता के आधार पर मुख्य रूप से शिफ्ट होता है।

सारांश

1. सार्वजनिक वस्तुओं का निजी वस्तुओं से अलग सामूहिक उपभोग होता है। सार्वजनिक वस्तुओं की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं–ये अप्रतिस्पर्धी होती हैं अर्थात एक व्यक्ति दूसरे की संतुष्टि में कमी किए बगैर अपनी संतुष्टि में वृद्धि कर सकता है तथा वे सार्वजनिक वस्तुएँ अवर्ज्य होती हैं अर्थात किसी को इन वस्तुओं का लाभ उठाने से वर्जित करने का कोई संभव तरीका नहीं है। इससे इनके उपयोग का शुल्क संग्रह करना कठिन होता है तथा निजी उद्यम आमतौर पर ऐसी वस्तुओं को मुहैया नहीं कराते हैं। अतः सरकार ही सार्वजनिक वस्तुएँ प्रदान करती है।
2. ये तीन फलन आवंटन, पुनर्वितरण और स्थिरीकरण इन तीनों के कार्यों का संचालन सरकार के व्यय एवं प्राप्तियों के माध्यम से होता है।
3. बजट में सरकार की प्राप्तियों एवं व्यय का विवरण होता है। वर्तमान वित्तीय आवश्यकताओं और देश के पूँजीगत स्टॉक में निवेश के बीच भेद करने की दृष्टि से बजट को दो भागों में विभक्त किया जाता है–(i) राजस्व बजट (ii) पूँजीगत बजट।
4. राजकोषीय घाटे के प्रतिशत में राजस्व घाटे की वृद्धि से निम्न पूँजी निर्माण सहित सरकारी व्यय की प्रकृति में गिरावट प्रदर्शित होती है।
5. आनुपातिक करों से स्वायत्त व्यय गुणक कम होता है क्योंकि करों के बाद शेष आय में से सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में कमी आ जाती है।
6. यदि सार्वजनिक ऋण से भविष्य में निर्गत में वृद्धि प्रभावित होती है, तो यह एक प्रकार का बोझ है।

मूल संकल्पनाएँ

सार्वजनिक वस्तुएँ
आभ्यंतरिक स्थिरक
स्वनिर्णयगत राजकोषीय नीति
रिकार्डो की समतुल्यता

बॉक्स 5.1 *राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजटीय प्रबंधन अधिनियम, 2003* (एफ.आर.बी.एम.ए.)

बहुदलीय संसदीय प्रणाली में व्यय संबंधी नीतियों के निर्धारण में निर्वाचकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह तर्क दिया जाता है कि विधायी प्रावधान जो सरकार के वर्तमान और भविष्य सब पर लागू होता है, घाटों को नियंत्रित करने में प्रभावकारी होता है। अगस्त, 2003 में एफ.आर.बी.एम.ए. का अधिनियमन वित्तीय सुधार और विवेकपूर्ण वित्तीय नीति का अनुसरण करने के लिए संस्थागत ढाँचे के माध्यम से सरकार को बाधित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम साबित हुआ। केंद्र सरकार को यह निश्चय करना चाहिए कि अंतर्पीढ़ीय समता हो और पर्याप्त राजस्व की प्राप्ति से दीर्घकालिक समष्टि-अर्थशास्त्रीय स्थायित्व प्राप्त हो। मौद्रिक नीति के राजकोषीय बाधा को दूर करते हुए और घाटे तथा ऋण-ग्रहण को सीमित करते हुए प्रभावकारी ऋण प्रबंध हो। इस अधिनियम के नियमों को जुलाई, 2004 के प्रभाव से अधिसूचित किया गया।

मुख्य विशेषताएँ

1. यह अधिनियम केंद्र सरकार को राजकोषीय घाटा में सकल घरेलू उत्पाद के 3 प्रतिशत तक और कमी करने के समुचित उपाय करने का आदेश देता है, जिससे 31 मार्च 2009 तक का राजस्व घाटे को दूर किया जाए और उसके बाद पर्याप्त राजस्व आधिक्य का निर्माण हो।
2. इसमें प्रत्येक वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का 0.3 प्रतिशत राजकोषीय घाटा में कटौती और 0.5 प्रतिशत राजस्व घाटे में कटौती की आवश्यकता बतलाई गई है। इसकी प्राप्ति यदि कर राजस्व से नहीं होती है, तो व्यय में कटौती से आवश्यक समंजन होना चाहिए।
3. निर्धारित लक्ष्य से अधिक वास्तविक घाटे में बढ़ोतरी केवल राष्ट्रीय सुरक्षा अथवा प्राकृतिक आपदा के आधार पर अथवा अन्य ऐसी आपवादिक स्थितियों, जिसे केंद्र सरकार निर्दिष्ट करती है, के आधार पर ही हो सकती है।
4. केंद्र सरकार भारतीय रिज़र्व बैंक से नकद प्राप्तियों के ऊपर नकद प्रतिपूर्तियों के अस्थायी आधिक्य की पूर्ति के लिए अग्रिम के अलावे अन्य किसी भी प्रकार का ऋण-ग्रहण नहीं करेगी।
5. भारतीय रिज़र्व बैंक वर्ष 2006-07 से केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों के प्राथमिक प्रतिभूतियों को नहीं खरीदेगा।
6. वित्तीय संचालन में अत्यधिक पारदर्शिता लाने के लिए उपाय किया जाना चाहिए।
7. केंद्र सरकार को संसद से दोनों सदनों के सामने वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ तीन विवरण– मध्यवर्ती राजकोषीय नीति विवरण, राजकोषीय कार्यनीति संबंधी विवरण और समष्टि अर्थशास्त्रीय ढाँचागत विवरण प्रस्तुत करना होगा।
8. बजट के संबंध में प्राप्तियों और व्यय प्रवृत्तियों की त्रैमासिक समीक्षा संसद के दोनों सदनों के सामने प्रस्तुत करना होगा।

यह अधिनियम केन्द्र सरकार पर लागू होता है। यद्यपि, 26 राज्यों में पहले से राजकोषीय विधि निर्माण की जवाबदेही है जो सरकार के अधिक विस्तृत नियम आधारित राजकोषीय सुधार कार्यक्रम को बनाती है। यद्यपि सरकार इस पर जोर देती है कि एफ.आर.बी.एम.ए. एक महत्त्वपूर्ण संस्थानिक उपाय है जो राजकोषीय समझदारी और समष्टि अर्थशास्त्रीय संतुलन को सहारा प्रदान करती है, इस अधिनियम के द्वारा वांछित लक्ष्य की पूर्ति के लिए कल्याणगत व्यय में कटौती की आशंका व्याप्त रहती है।

सुझावात्मक पठन

डोर्नबुश आर. और एस. फिशर, 1994 *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* छठा संस्करण, मैक्ग्राहिल।

मानकिव एन. जी., 2000, *मैक्रोइकोनॉमिक्स*, चौथा संस्करण, मैकमिलन।

आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, विभिन्न मुद्दे।